संपादकीय

एक लंबे समय से शिक्षकों की पेशेवर तैयारी को आवश्यक माना जाता रहा है, लेकिन इसका ज़मीनी यर्थाथ आज भी शोचनीय है। प्रचिलित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में न तो नए विचारों को संदर्भ में लिया जाता है और न ही विद्यालय और समाज से जुड़े मुद्दों की इसमें व्यापक रूप से चर्चा हो पाती है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव की ज़रूरत को दोहराते हुए *ऋषभ कुमार मिश्र* ने अपने लेख में चर्चा की है कि यह बदलाव कैसे लाए जा सकते हैं। *जितेन्द्र कुमार पाटीदार* ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि शिक्षक शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को बदलने के लिए शिक्षाविद्, केंद्र और राज्य सरकारें, शिक्षक शिक्षा संस्थान और न्यायपालिका, सभी प्रयासरत् हैं।

विद्यालय में विद्यार्थी प्रतिदिन लगभग 6-7 घंटे बिताते हैं। बदलते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, बढ़ती हुई अपेक्षायें व आकांक्षाएँ तथा संचार माध्यमों की बहुलता से आज के विद्यार्थी अनेक समस्याओं से घिरे रहते हैं। इन समस्याओं को समझना और उन्हें हल करने में विद्यार्थी की मदद करना प्रत्येक शिक्षक से अपेक्षित है। इसी मुददे् को केंद्र में रखते हुए *चित्ररेखा* और *मनोज कुमार* ने अपने लेख में विश्लेषणात्मक टिप्पणी की है। किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जिसमें अधिकतर बच्चों को संवेगात्मक अस्थिरता, शारिरिक बदलाव व मानसिक द्वन्दों का सामना करना पड़ता है। यदि इस अवस्था में सही मार्गदर्शन न मिले तो किशोर भटक जाते हैं। सही 'किशोरावस्था शिक्षा की आवश्यकता' पर ज़ोर देते हुए *पंकज अरोड़ा* ने अपने लेख में यह जानने का प्रयास किया है कि कार्यरत् शिक्षक और भावी शिक्षक किशोरावस्था शिक्षा से क्या समझते हैं। लेखक का मानना है कि किशोरावस्था शिक्षा देना हम सभी की साझी ज़िम्मेदारी है।

बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम अप्रैल 2010 से लागू हो चुका है। परंतु इसका क्रियान्वयन पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है। इस अधिनियम के अनुरूप गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए कहीं तो विद्यालय और मूलभूत सुविधाओं की कमी है तो दूसरी ओर योग्य और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। इसी संदर्भ में *केवलानंद काण्डपाल* ने उत्तराखण्ड राज्य के एक जनपद में इस अधिनियम के अंतर्गत प्रारंभिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति की समीक्षा प्रस्तुत की है।

'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा है-ऐसे बच्चे, जो काम

में लगे रहने की मजबूरी के कारण विद्यालय नहीं जा पाते अथवा बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने को विवश होते हैं। *रश्मि श्रीवास्तव* ने अपने लेख में बाल श्रम की समस्या से जुड़े पहलुओं का विश्लेषण किया है तथा इस समस्या के समाधान के लिए कुछ उपाय सुझाए हैं, ताकि काम-काज में लगे बच्चे भी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

शारदा कुमारी ने अपने अनुभवपरक लेख में विद्यालयों में व्याप्त शाब्दिक हिंसा का खुलासा किया है, जिसकी शिकार बालिकाएँ अधिक होती हैं। लेखिका के अनुसार इसके पीछे शिक्षकों की परंपरागत सोच है, जिसकी वजह से वे आज भी बालिकाओं के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते हैं।

वर्तमान समय में विद्यालय एवं कक्षागत कार्यकलापों में सभी बच्चों की भागीदारी अपेक्षित है। आज बच्चे शैक्षिक कार्यकलापों में हिस्सा लेते दिखाई भी पड़ते हैं। *अक्षय कुमार दीक्षित* ने अपने लेख में उदाहरणों के माध्यम् से यह समझाने का प्रयास किया है कि वास्तव में बच्चों की सहभागिता के क्या मायने हैं और उनकी सहभागिता को कैसे बढ़ाया जा सकता है।

कई दशकों से शिक्षा व्यवस्था में कला के महत्व पर बार-बार चर्चा की गई है और इसकी अनुशंसा की जाती रही है। लेकिन इस दिशा में कुछ खास प्रगति नहीं हुई है। हमारी शिक्षा व्यवस्था कला को 'उपयोगी शौक' या 'मनोरंजक गतिविधि' मात्र मानती है। शैक्षिक प्रक्रिया के अंतर्गत कलाओं के महत्व के प्रति सही सोच का अभाव है। *प्रगति तिवारी* ने अपने लेख में बाल कला के वर्तमान स्वरूप का चित्रण प्रस्तुत करते हुए 'सही सोच' को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

इस अंक के अंत में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सरोकार-पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन संबंधी लेख दिया गया है जिसे *रवि पी. भाटिया* ने लिखा है।

सभी पाठकों को नव वर्ष 2015 की बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

अकादमिक संपादकीय समिति